तृतीय अध्याय : संस्कृत-काव्यशास्त्र में अलंकार विवेचन की परम्परा

3.1 अलंकारों का प्रादुर्भाव और परम्परा

3.2 काव्य में अलंकारों का महत्त्व

3.3 अलंकारों का वर्गीकरण

तृतीय अध्याय - संस्कृत-काव्यशास्त्र में अलंकार विवेचन की परम्परा

3.1 अलंकारों का प्रादुर्भाव और परम्परा -

भरतमुनि साहित्यशास्त्र के आचार्यों में सबसे प्राचीन एवं प्रथम आचार्य माने जाते हैं । आचार्य भरत का विवेच्य विषय यूं तो मूलतः दृश्यकाव्य ही था, तथापि अलंकारों के सम्बन्ध में भी उन्होंने प्रसंगतः बहुत कुछ लिखा है । भरत ने रुपकों की भाषा पर प्रकाश डालते हुए चार अलंकारों का उल्लेख किया - उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक । इन चारों में से एक 'यमक' शब्दालंकार है शेष तीन अर्थालंकार हैं । इन अलंकारों के अतिरिक्त भरत ने काव्यबन्ध में 36 लक्षणों (विभूषण) के उपयोग की बात भी कही है ।[1] भामह ऐसे प्रथम आचार्य थे, जिनका लक्ष्य श्रव्यकाव्य का विवेचन करना था और जिन्होंने मुख्यतः अलंकारों का ही व्याख्यान किया है । उन्होंने रस और भाव का अलंकारों में अन्तर्भाव करते हुए अलंकार को ही काव्य का प्राण माना है । अलंकारों में भी अर्थालंकार 'वक्रोक्ति' को प्रधान माना है । भामह का 'काव्यालंकार' अलंकार-शास्त्र का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है जिसमें अलंकार-शास्त्र एक स्वतन्त्रशास्त्र के रूप में है । इसके पूर्व भरत के 'नाट्यशास्त्र' के नवें अध्याय में गौण रूप से काव्य के गुण, दोष, अलंकार आदि के लक्षण किए गए थे, किन्तु वे सब 'नाट्यशास्त्र' के अंग रूप में ही थे । स्वतन्त्र रूप में अलंकारशास्त्र को एक अलग शास्त्र का रूप प्रदान करने वाला भामह का 'काव्यालंकार' ग्रन्थ ही है । भामह ने यमक (जिसके पाँच भेद - आदियमक, मध्यान्त यमक, पादाभ्यास, आवली और समस्तपाद यमक कहें हैं) के अतिरिक्त अनुप्रास[2] नामक एक शब्दालंकार ग्राम्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास दो भेदों सहित और बढ़ाया । इससे स्पष्ट है कि भरत के बाद और भामह से पूर्व इन दो अनुप्रासों का विकास हो चुका था, भामह ने कदाचित् उन्हें एक सामान्य वर्ग अनुप्रास के अन्तर्गत रखकर इन दोनों को उसी का भेद बताया । अस्तु, भामह ने अनुप्रास तथा यमक दो शब्दालंकार तथा 36 अर्थालंकार कहे हैं ।

---

1. काव्यबन्धास्तु कर्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्विताः ।
2. सरुपवर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते । भामह, काव्यालंकार 2-5

भामह के 36 अर्थ अलंकार निम्नलिखित हैं -

रुपक, दीपक, उपमा, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, यथासंख्या, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, प्रेय:, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट, अपह्नुति, विशेषोक्ति विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमा-रुपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससन्देह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविकत्व तथा आशी: ।[1] इनके अतिरिक्त भामह ने हेतु, सूक्ष्म तथा लेश की भी निषेधार्थ सूचना दी है । इस प्रकार काव्य शास्त्र में अलंकारों का प्रादुर्भाव होने के साथ-साथ उनके विकास की लम्बी परम्परा संस्कृत साहित्य में चल पड़ी ।

भामह के अलंकार विवेचन में उन द्वारा कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है । उपर्युक्त दो शब्दालंकार तथा छत्तीस अर्थालंकारों के क्रम में भामह ने जो अलंकारों का निरुपण किया है । उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अलंकारों में विभाजन स्वीकार्य नहीं था ।

इसी अलंकार वादी परम्परा में, जिन्होंने अलंकार शास्त्र पर स्वतन्त्र रूप में ग्रन्थ रचना की, भामह के परवर्ती दूसरे आचार्य (सातवीं शताब्दी) दण्डी हैं । दण्डी के तीन ग्रन्थों में से अलंकारशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ 'काव्यादर्श' ही है । उन्होंने अपने ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद में अलंकार-विवेचन में संशोधन करते हुए अर्थ-अलंकारों की संख्या को 35 तक ही सीमित किया जिनकी सूची क्रमश: निम्नलिखित है[2] -

1. स्वभावोक्ति, 2. उपमा, 3. रूपक, 4. दीपक, 5. आवृत्ति, 6. आक्षेप, 7. अर्थान्तरन्यास, 8. व्यतिरेक, 9. विभावना, 10. समासोक्ति, 11. अतिशयोक्ति, 12. उत्प्रेक्षा, 13. हेतु, 14. सूक्ष्म, 15. लेश (लव), 16. यथासंख्य (क्रम), 17. प्रेय, 18. रसवत् 19. ऊर्जस्वि, 20. पर्यायोक्त, 21. समाहित,

---

1. अलंकार मीमांसा, डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, पृष्ठ - 146
2. काव्य प्रकाश, व्याख्याकार स्व0 आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, भूमिका पृष्ठ - 40

22. उदात्त, 23. अपह्नुति, 24. श्लेष, 25. विशेषोक्ति, 26. तुल्ययोगिता, 27. विरोध, 28. अप्रस्तुतप्रशंसा, 29. व्याजोक्ति, 30. निदर्शना, 31. सहोक्ति, 32. परिवृत्ति, 33. आशी:, 34. संसृष्ट और 35. भाविक ।

दण्डी के इन अलंकारों में भामह के यथासंख्य, उपमारुपक, उपमेयोपमा, ससन्देह, अनन्वय तथा उत्प्रेक्षावयव ये छ: अलंकार नहीं है ।[1] भामह द्वारा प्रत्याख्यात हेतु, सूक्ष्म तथा लेश के संग्रह के अतिरिक्त काव्यादर्श में आवृत्ति तथा क्रम के नाम से दो नये अलंकारो की प्रस्तावना भी की है । दण्डी की एक विशेषता यह रही है कि उन्होंने अलंकारों की संख्या न बढ़ाकर उनके भेदों की संख्या को बहुत अधिक आगे बढ़ाया है जबकि भामह ने अलंकारों के भेद नहीं कहे । उनके द्वारा प्रवर्तित अनेक अलंकार-भेद कालान्तर में या तो स्वतन्त्र अलंकार बन गए अथवा परवर्ती आचार्यो के भेदों में अन्तर्निहित हो गए ।

दण्डी के बाद, अगले आचार्य उद्भट (आठवीं शताब्दी का अन्तिम नवीं शताब्दी का प्रारम्भ) काश्मीरी ब्राह्मण थे । ये कश्मीर के राजा जयादित्य की राजसभा के पण्डित ही नहीं, अपितु सभापति भी थे । दण्डी के समान साहित्यशास्त्र के सम्बन्ध में उद्भट ने तीन ग्रन्थ लिखे थे परन्तु उनमें से केवल अलंकारशास्त्र से सम्बद्ध इनका एकमात्र उपलब्ध 'काव्यालंकारसारसंग्रह' ही है । इन्होंने भामह का ही समर्थन करते हुए कुछ नये अलंकार और जोड़कर अलंकारों की संख्या 41 तक बढ़ा दी ।[2] इस ग्रन्थ को छ: वर्गो में विभक्त करते हुए इन्होंने कुल मिलाकर 79 कारिकाएँ एवं उपर्युक्त अलंकारों के लक्षण आदि दिए और उनके उदाहरण ग्रन्थकार ने अपने ही 'कुमारसम्भवकाव्य' में से 100 श्लोक उद्धृत किए हैं ।

'काव्यालंकारसारसंग्रह' के रचयिता उद्भट ने लगभग भामह का ही समर्थन करते हुए 1. पुनरुक्तवदाभास, 2. काव्यलिंग 3. छेकानुप्रास 4. दृष्टान्त और 5. संकर[3] इन 5 अलंकारों की स्वतन्त्र रूप में स्थापना की । ये पाँच अलंकार ऐसे ही न तो भामह के 'काव्यालंकार' में और न ही दण्डी के 'काव्यादर्श' में ही पाये जाते है ।

---

1. अलंकारमीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र द्विवेदी, पृष्ठ - 150 ।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त, डॉ0 गणपति चन्द्रगुप्त पृष्ठ - 43
3. संकर का अन्तर्भाव दण्डी ने संसृष्टि के अन्तर्गत किया था ।

1. उत्प्रेक्षावयव, 2. उपमारूपक और 3. यमक ये तीन अलंकार ऐसे है जो भामह ने और दण्डी ने उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत माने हैं किन्तु उद्‌भट ने उनकों नहीं माना । 1. रसवत्, 2. प्रेय, 3. ऊर्जस्विन्, 4. समाहित और 5. श्लिष्ट ये पॉंच अलंकार ऐसे हैं जिनका भामह और दण्डी ने वर्णन तो किया है परन्तु उनके लक्षण दोनों जगह अस्पष्ट हैं । उद्‌भट ने इनके लक्षण बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए है । इस प्रकार पुनरुक्तवदाभासादि पॉंच अलंकारों की स्थापना तथा रसवत् आदि पॉंच अलंकारों के लक्षणों का स्पष्टीकरण उद्‌भट की साहित्यशास्त्र को अपनी विशेष देन है ।

अलंकारशास्त्र के आचार्यों में उद्‌भट के बाद वामन का स्थान आता है । साहित्यशास्त्र के इतिहास में वामन का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है । ऊपरोक्तानुसार उद्‌भट के समान वामन भी कश्मीर के निवासी तथा वहां के राजा जयादित्य की सभा के मन्त्री थे । ये उद्‌भट के समकालीन तथा सहयोगी थे । अतएव इनका समय आठवीं शताब्दी के अन्त में और नवम् शताब्दी के आरम्भ में पड़ता है ।

वामन का एकमात्र ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' है । अलंकारशास्त्र पर रचित यह ऐसा ग्रन्थ है जो सूत्रशैली में लिखा गया है । यह ग्रन्थ पॉंच अधिकरणों में विभक्त तथा इसमें 312 सूत्र है । इसमें ग्रन्थकार ने 'तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:' (3-1.2), इन सूत्रों में गुण तथा अलंकार के भेदनिरुपण से ही इस अधिकरण का आरम्भ किया है ।

वामन ने कुल 31 अलंकार माने हैं । जो निरुपण-क्रम में निम्नप्रकार से हैं -

शब्दालंकार --- यमक, अनुप्रास

अर्थालंकार ---- उपमा,[1] प्रतिवस्तूमा, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना,

---

1. वामन ने यमक, अनुप्रास तथा उपमा का चतुर्थ अधिकरण के द्वितीय अध्याय ने पर्यायोक्त प्रेय:, रसवत्, उर्जस्वित्, उदात्त, भाविक तथा सूक्ष्म अलंकारों का निरुपण छोड़ दिया है में प्रतिपादन किया है और शेष अलंकार (जिन्हें वे उपमा का प्रपंच मानते हैं) तृतीय अध्याय में प्रतिपादित हैं ।

अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, क्रम, दीपक, निदर्शन, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि । वामन ने पर्यायोक्त प्रेय:, रसवत्, ऊर्जस्वित, उदात्त, भाविक तथा सूक्ष्म अलंकारों का निरुपण छोड़ दिया है ।

इस प्रकार भामह से लेकर वामन के समय तक 55 अलंकारों की चर्चा हो चुकी थी । इनमें से वामन ने 31 अलंकार माने हैं तो उद्‌भट ने 49 अलंकारों का लक्षणोदहारण सहित विवेचन किया है ।

लगभग इसी समय में रुद्रट ने 'काव्यालंकार' ग्रन्थ की रचना करके अलंकारों का वर्गीकरण किया तथा अलंकारों की संख्या 50 से भी अधिक नियत की । उन्होंने अलंकार-सम्प्रदाय की अनेक परम्परागत आने वाली भ्रान्तियों का भी निराकरण किया । इनसे पूर्ववर्ती जिन अलंकारवादी आचार्यो ने रस, भाव आदि को भी अलंकार मानने की भूल की थी, रुद्रट ने इसका स्पष्ट विरोध किया । आगे चलकर जिन अनेक आचार्यों ने अलंकार परम्परा को आगे बढ़ाया उनमें मम्मट (11वीं शतीं) ने अपने विशद ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' के नवम् एवं दशम उल्लासों में अलंकारों का सूत्र और कारिकाओं में भेद-लक्षण-उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन किया है । मम्मट ने काव्यप्रकाश के नवम् उल्लास में 6 शब्दालंकार और दशम् उल्लास में 61 अर्थालंकारों का निरुपण किया है । अलंकारों के विवेचन की दृष्टि से यह अब तक का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । भोज ने अलंकार-मीमांसा द्वारा एक नई परम्परा का प्रवर्तन किया । भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' के द्वितीय परिच्छेद में 24 शब्दालंकारों का अनेक भेदोपभेद व तृतीय परिच्छेद में 24 अर्थालंकारों का भेदोपभेद व चतुर्थ अध्याय में 24 उभयालंकारों का वर्णन किया । रूय्यक (अलंकार सर्वस्व: 12वीं शती), जयदेव (चन्द्रालोक : 13 वीं शती), विद्याधर (एकावली : 13-14वीं शती), विश्वनाथ (साहित्यदर्पण : 14वीं शती), केशव मिश्र (अलंकार शेखर : 16वीं शती), अप्पयदीक्षित (कुवलयानन्द : 17वीं शती) आदि संस्कृत के अलंकारवादी आचार्यों की एक लम्बी परम्परा रही है । इनमें से मम्मट और विश्वनाथ को छोड़कर शेष सभी अलंकारवादी आचार्य थे, जो कि अलंकार को ही काव्य की आत्मा मानते थे, जबकि मम्मट ध्वनि को

व विश्वनाथ रस को मुख्य मानते थे । रुद्रट के परवर्ती आचार्यो की प्रवृत्ति विशेषकर अलंकारों की संख्यावृद्धि की ओर रही । फलस्वरूप कुवलयानन्द तक यह संख्या लगभग सवा सौ तक पहुॅंच गई ।

3.2 काव्य में अलंकारों का महत्त्व -

काव्य मानव की अन्तरात्मा की तृप्ति का साधन है । यह तृप्ति काव्यगत सौन्दर्य से होती है । काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि के लिए काव्यकार सतत् प्रयत्नशील रहे हैं । आदि ग्रन्थ ऋग्वेद की भाषा में उपमा, रूपक, यमक, जैसे अलंकारों का अविरल प्रयोग हुआ है ।[1] उमपा [2] और अरंकृता: पदों का व्यवहार आया है ।[3] अलंकार काव्यसौन्दर्य साधनों में से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । काव्यशास्त्र के इतिहास में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विद्वानों की दृष्टि अलंकार-विवेचन की ओर आरम्भ से ही रही है । यही नहीं, अपितु एक दीर्घ-अवधि तक अलंकार को काव्य का सर्वस्व माना जाता रहा है । अलंकार-विवेचन की इस महत्ता के कारण काव्य के अन्य अंगों को गौण मानकर ही काव्यशास्त्र को 'अलंकारशास्त्र' के नाम से भी अभिहित किया गया ।

रस-सम्प्रदाय के बाद दूसरा स्थान अलंकार-सम्प्रदाय का आता है । कालक्रम से भरतमुनि के बाद होने वाले दूसरे आचार्य भामह इस अलंकार-सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं । उनके पश्चात् 'भामह विवरण' के निर्माता उद्‌भट और दण्डी, उद्‌भट, वामन, रूद्रट, मम्मट प्रतिहारेन्दुराज, जयदेव तथा विश्वनाथ आदि अनेक आचार्य इस अलंकार-सम्प्रदाय के पोषक रहे हैं । इनके मत में काव्य का प्राणभूत जीवनाधायक तत्त्व 'अलंकार' ही है । इन आचार्यो के अनुसार अलंकार-विहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है, जैसी उष्णताविहीन अग्नि की कल्पना करना । चन्द्रालोक के रचयिता जयदेव ने काव्यप्रकाशकार मम्मट के काव्य

---

1. इस सम्बन्ध में देखिए - Similies in Sanskrit Literature.
2. सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रमग्न उपमां केतुमर्य: ऋग्वेद 5.3.34.9
3. अलंकार-मीमांसा, डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, द्वितीय अध्याय, पृष्ठ 85

लक्षण में आये - 'अनलंकृती पुन: क्वापि[1] अर्थात् कहीं-कहीं अलंकारहीन शब्दार्थ भी काव्य हो सकते है' इस वाक्यांश पर कटाक्ष करते हुए लिखा है -

अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।।

अर्थात् काव्यप्रकाशकार जो अलंकारविहीन शब्द और अर्थ को भी काव्य मानते हैं वे उष्णता विहीन अग्नि की सत्ता क्यों नहीं मानते ? अलंकार सम्प्रदायवादी, काव्य में अलंकारों को ही प्रमुखता देते हैं और इसका अन्तर्भाव रसवत् अलंकारों में करते हैं । रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वित् और समाहित ये चार प्रकार के रसवद् अलंकार माने जाते हैं । भामह और दण्डी दोनों अलंकारवादी आचार्यों ने इन रसवदअलंकारों के भीतर ही रस का निम्न प्रकार से अन्तर्भाव किया है -

'रसवद्दर्शितस्पष्टश्रृंगारादिरसं यथा' ।[2]
'मधुरे रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति: ।'[3]

यदि शब्द और अर्थ दोनों ही काव्य के शरीर हैं तो इन दोनों के अंगों की शोभा को भौतिक आभूषण अंगद आदि की तरह यमक, उपमा, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार शोभा को बढ़ाते हैं ।

'सालंकारस्य काव्यत्वम्' आचार्य कुन्तक द्वारा समस्त शब्दार्थ समुदाय को काव्यत्व कहा गया है अर्थात् तात्पर्य यह है कि अलंकार काव्य का स्वरुपाधायक धर्म है ।

निष्कर्षत: अंलकार-सम्प्रदाय अलंकारों को काव्य का अपरिहार्य स्थिर तत्त्व मानता है । अत: काव्य में अलंकारों का महत्त्व विशिष्टतम है ।

---

1. काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका 4 सूत्र -1
2. काव्यालंकार, भामह 3/6
3. काव्यादर्श, दण्डी 3/51

3.3 अलंकारों का वर्गीकरण :

भारतीय आचार्यों ने अलंकारों के तीन भेदों शब्दालंकार, अर्थालंकार व उभयालंकार के अन्तर्गत शताधिक अलंकारों को परिणगन तो किया है परन्तु रुद्रट के पूर्व अलंकारों के वर्गीकरण के मूलतत्त्वों पर कोई विस्तृत विचार नहीं जान पड़ता । भामह तथा दण्डी ने अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति का तथा वामन ने औपम्य का वर्णन वर्गीकरण की दृष्टि से नहीं किया था । तथापि अलंकारों को सामान्य तत्त्वों के अन्तर्गत रखने का दिशा संकेत अवश्य कर दिया था । रुद्रट से पूर्व वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष इन चारों तत्त्वों पर व्यापक चर्चा हो चुकी थी तथा रुद्रट ने भी अपने ग्रन्थ में इन्ही चार मूलतत्त्वों के अन्तर्गत अलंकारों की चार श्रेणियाँ मानी ।[1] रुद्रट ने शब्दालंकार और अर्थालंकार इन दो कोटियों में समस्त अलंकारों को विभाजित किया है । वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा चित्र ये पाँचों शब्दालंकार की कोटि में आते है । रुद्रट ने ऊपरवर्णित चार वास्तव, औपम्य, अतिशय, श्लेष वर्गों के अन्तर्गत अर्थालंकारों की संख्या 68 निर्धारित की है ।[2] उन्होंने वास्तव

---

1. अर्थस्यालंकारा: वास्तवमौपम्यमतिशय: श्लेष: ।
   एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति नि:शेषा: ।। काव्यालंकार 7/9
2. इनकी सूची 'काव्यालंकार' में निम्न प्रकार से है -

वास्तव : तस्य सहोक्ति-समुच्चय-जाति-यथासंख्य-भाव-पर्याया: ।
विषयानुमान, दीपक, परिकर-परिवृत्ति-परिसंख्या ।।
हेतु कारणमाला व्यतिरेकोऽन्योन्यमुत्तरं सारम् ।
सूक्ष्मं लेशोऽवसरो मीलितमेकावली भेदा: ।। 7/11-12

औपम्य : उपमोत्प्रेक्षा-रुपकमपह्नुति: संशय: समासोक्ति: ।
मतमुत्तरमन्योक्ति प्रतीपमर्थान्तिरन्यास: ।।
उभयन्यास-भ्रान्तिमदाक्षेप-प्रत्यनीक-दृष्टान्ता: ।
पूर्व-सहोक्ति-समुच्चय-साम्य-स्मरणानि-दृष्टान्ता: ।।

अतिशय : पूर्व-विशेषोत्प्रेक्षा-विभावना-तद्गुणाधिक-विरोधा: ।।
विषमासंगति-पिहित-व्याघाताहेतवो भेदा: ।। 9/2

श्लेष : अविशेष-विरोधाधिक-वक्र-व्याजोक्त्यसंभवावयवा: ।
तत्त्वविरोधाभासाविति भेदास्तस्य शुद्धस्य ।। 10/2

संकर : योगवशादेतेषां तिलतण्डुलवच्च दुग्धजलवच्च ।
व्यक्ताव्यक्तांशत्वात् संकर उत्पद्यते द्वेधा ।। 10/25

वर्ग में 23 अलंकार, औपम्य वर्ग में 21, अतिशय वर्ग में 12 तथा श्लेष में दस अर्थालंकार रखे हैं । इन 66 अलंकारों के अतिरिक्त संकर के दो अलंकार-प्रकारों को उन्होंने अन्त में रखा है । भामह, दण्डी तथा वामन द्वारा निर्दिष्ट अलंकार के मूल तत्त्व के आधार पर अलंकारों का यह वर्गीकरण प्रथम व्यवस्थित था । यह प्रथम प्रयास होने के कारण सदोष है । सदोषता का कारण यह रहा है कि उन्होंने कई अलंकारों को दो-दो वर्गों में रखा है । सहोक्ति और समुच्चय को उन्होंने वास्तव और औपम्य इन दो वर्गों में रखा । विषम तथा हेतु को वास्तव तथा अतिशय की श्रेणियों में तथा पूर्वालंकार और उत्प्रेक्षा को औपम्य तथा अतिशय के वर्गों में रखा ।

मम्मट स्वयं तो इस मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण से परिचित नहीं थे । परन्तु रुद्रट द्वारा वर्गीकरण का आधार प्रस्तुत करने के बाद भी मम्मट ने अलंकारों का क्रम अवैज्ञानिक और अव्यवस्थित ही रखा । भामह और दण्डी की भाँति ही वर्गीकरण और क्रम की किसी पद्धति के बिना ही मम्मट ने अलंकार-मीमांसा प्रस्तुत की है । रुद्रट के बाद मम्मट के लिए यह आवश्यक था, कि वे अपने अनुसार वर्गीकरण की कोई पद्धति या परिपाटी अपनाते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

जहाँ रुद्रट ने अलंकारों की उपर्यंकित चार श्रेणियाँ मानीं, वहाँ 'अलंकारसर्वस्व' के निर्माता रुय्यक (बारहवीं शताब्दी का मध्य भाग) ने 67 अलंकारों का प्रतिपादन करते हुए रचना शैली के आधार पर निम्नांकित 7 श्रेणियाँ निश्चित की हैं - 1. सादृश्यगर्भ, 2. विरोधमूलक, 3. शृंखलाबद्ध 4. तर्क-न्यायमूलक 5. वाक्य-न्यायमूलक 6. लोक-न्यायमूलक, 7. गूढार्थ-प्रतीतिमूलक । परवर्ती विद्वानों ने भी प्राय: इसी वर्गीकरण को सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया है अत: इसका यहाँ संक्षिप्त परिचय देना उपयुक्त होगा ।

1. सादृश्यगर्भ[1] - इनमें वस्तु और अलंकार के उपमेयऔर उपमान के गुणधर्म आदि में किसी न किसी प्रकार से सादृश्य दिखाकर मूल भाव के प्रभाव की अभिवृद्धि की जाती है । इस वर्ग के फिर चार अवान्तर विभाग किए गए है -

अ - [2]भेदाभेद प्रधान - 4 आ - आरोपमूलक अभेदप्रधान - 6

---

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त , पृष्ठ 45
2. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, पृष्ठ 441, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर

इ - अध्वसायमूलक अभेद प्रधान - 2

ई - गम्य औपम्यमूलक अलंकार - 17

सादृश्यमूलक अलंकार कुल - 29

1. सादृश्य मूलक चार अलंकार - अ - भेदाभेदप्रधान इस वर्ग में 1. उपमा, 2. उपमेयोपमा, 3. अनन्वय, 4. स्मरण

आ - आरोपमूलक अभेदप्रधान छः अलंकार - 5 रुपक, 6 परिणाम, 7 ससन्देह, 8 भ्रान्तिमान्, 9 उल्लेख, 10, अपह्नुति ।

इ - अध्यवसायमूलक अभेदप्रधान दो अलंकार - 11 उत्प्रेक्षा, 12 अतिशयोक्ति ।

ई - गम्य औपम्याश्रित सादृश्यमूलक सत्रह अलंकार - 13 तुल्ययोगिता, 14. (पदार्थगत) दीपक, 15. प्रतिवस्तूपमा, 16. दृष्टान्त, 17. (वाक्यार्थगत) निदर्शना, 18. व्यतिरेक, 19. (श्लेषप्रधान) सहोक्ति, 20. विनोक्ति, 21. समासोक्ति, 22. विशेषण-विच्छित्त्याश्रय) परिकर, 23 (विशेष्य विच्छित्त्याश्रय) परिकरांकुर, 24. (विशेषण-विशेष्य - विच्छित्त्याश्रय) श्लेष, 25. अप्रस्तुतप्रंशसा, 26. अर्थान्तरन्यास, 27. पर्यायोक्ति, 28. व्याजस्तुति 29. आक्षेप । पं0 रामदहिन मिश्र ने इनकी संख्या 28 मानी है ।

2. विरोधमूलक 11 अलंकार - इनमें वस्तु और अलंकार के गुण धर्मो में वैषम्य या विरोध की प्रमुखता रहती है । इस वर्ग में 30 विरोध (या विरोधाभास), 31. विभावना, 32. विशेषोक्ति, 33. असंगति, 34. विषम, 35. सम, 36. विचित्र, 37. अधिक, 38.अन्योन्य, 39. विशेष, 40. व्याघात । डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त ने इस वर्ग में 12 अलंकार माने हैं ।

3. शृंखलाबद्ध तीन अलंकार - इनमें विषय-वस्तु को क्रम या शृंखला के रूप में रख कर सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है जिस प्रकार कमरे में बिखरी वस्तुओं को क्रमशः सजा देने पर उनकी शोभा बढ़ जाती है, वैसे ही शृंखलाबद्ध अलंकारों से काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि होती है । इसमें 41 कारणमाला, 42 एकावली, 43. सार । मम्मट ने काव्यप्रकाश में मालादीपक[1] को इस वर्ग के अन्तर्गत माना है ।

---

1. मम्मट, काव्यप्रकाश, सूत्र - 156

4. तर्कन्यायमूलक दो अलंकार – न्यायशास्त्रीय तर्क-अनुमानादि के द्वारा उक्ति को प्रभावशाली बनाया जाता है । 44. काव्यलिंग, 45. अनुमान ।

5. वाक्यन्यायमूलक आठ अलंकार – जिसमें तर्कपूर्ण सामान्य उक्ति या वाक्य के द्वारा वस्तु को प्रभावशाली बनाया जाए । 46. यथासंख्य, 47. पर्याय, 48. परिवृत्ति, 49.परिसंख्या, 50. अर्थापत्ति, 51. विकल्प, 52. समुच्चय, 53. समाधि ।

6. लोकन्यायमूलक सात अंलकार – 54. प्रत्यनीक, 55. प्रतीप, 56. मीलित, 57. सामान्य, 58. तद्गुण, 59. अतद्गुण, 60. उत्तर

7. गूढार्थ-प्रतीति मूलक सात अलंकार – इनमें मुख्यत: व्यंजनाशक्ति का वैभव रहता है । 61. सूक्ष्म, 62. व्याजोक्ति, 63. वक्रोक्ति, 64. स्वभावोक्ति, 65. भाविक, 66. संसृष्टि, 67. संकर ।

इस प्रकार अलंकारसर्वस्वकार रूय्यक ने 67 अलंकारों का वर्गीकरण किया है । मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में केवल 61 अर्थालंकार दिए हैं ।

इस प्रकार 'काव्यप्रकाश' के अलंकारों का रूय्यक के अलंकारों के वर्गीकरण के साथ समन्वय हो जाता है और यही वर्गीकरण अलंकारशास्त्र में सर्वमान्य है ।

इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि अलंकारों का उपर्युक्त वर्गीकरण पूर्णत: संतोषजनक तो नहीं है, किन्तु उतना अनर्गल भी नहीं है । अत: इन सबको अपनाकर अलंकारवादियों ने एक प्रकार से कथन शैली की समृद्धि एवं सौन्दर्य के मार्ग का दिग्दर्शन कराया है ।